THE ECONOMIC TIMES

Date:19-02-24

Hooking CSR to a Cause of Choice

Ratan Tata's vet hospital sets a corporate model

ET Editorials

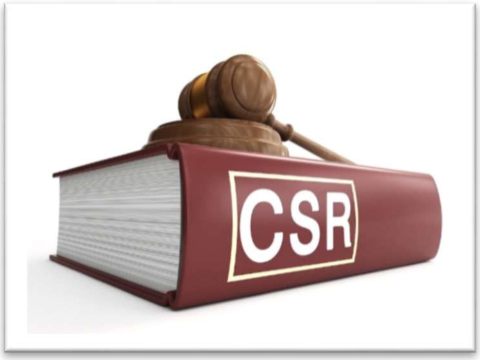

CSR, as mandated by the state, has been a self-serving endeavour. Automobile makers funnel resources into lowering emissions, food producers invest in organic farming, cosmetics companies sponsor football teams, technology providers make endowments for education, and energy firms generate power from renewable sources. Which is fair enough. The CSR law is designed to serve the larger good — broadly UN's millennium development goals — through self-interest. It is a softer touch than outright taxation to meet social needs, and corporations are free to view their responsibility through the prism of business.

Philanthropy, when it enters the equation, does so in a controlled setting. Which makes Ratan Tata's act of setting up a veterinary hospital in Mumbai an outlier among CSR outcomes, but something worth aspiring for.

India offers strong economic and demographic profiles for growth of pet ownership. The population of household pets tends to expand with the middle class, to which India is contributing the most now. Millennial households are the biggest age cohort with pet animals, and again, India has the largest population of 25-year-olds in the world. Pet ownership has demonstrable effects on reducing human healthcare costs. The country needs to build greater veterinary capacity given the unusually high incidence of strays.

Tata's project, thus, sits within the rubric of CSR, although the involvement of group companies, or the wider corporate sector is fairly limited. Companies could draw inspiration from private philanthropy to what can emerge as a scalable CSR initiative that has a resonance with consumers. Indian families are shrinking, and children are being conceived later in marriages. Pets are filling up some of the gap and constitute an unorthodox bridge between sellers and buyers. A caring attitude in an area seemingly off limits for business may bolster corporate value proposition. The Tatas have shown how innovative social responsibility can lead to improved business outcomes. The latest out-of-the-box cue will not be lost either.

THE HINDU

Date:19-02-24

Misplaced priorities

The free movement regime between India and Myanmar had more benefits than costs

Editorials

A nation is defined not by the borders that demarcate it but by the people who live in it. This is not just an abstract adage but a vision of nation-building and sustenance, especially for a country that emerged out of colonial rule. The idea of neighbourly relations and borders was tied not just to the interest of national security for the post-colonial nation-state but also to the interests of the people in border areas and their imagined histories. When Home Minister Amit Shah announced that the “Free Movement Regime” (FMR) in place in Indian States bordering Myanmar from 2018 would be scrapped and that the India-Myanmar border be fenced, he was decidedly negating this idea. The ostensible reason for this demand and the need for fencing is because the porous border has served as a conduit for narcotics, besides helping insurgent groups in the north-east to establish bases within areas in Myanmar where the junta’s writ is relatively non-existent or weak. But these reasons are not convincing in themselves. Most insurgent groups have weakened substantially and successive Indian governments have been able to neutralise their threats through force or peace efforts, ongoing or completed. Besides, the drug trade is enabled not only by the border’s porosity but also by the relative lack of strong law enforcement with the cooperation of residents.

That the demand to scrap the FMR has been most vociferously endorsed by one section of the currently conflict-prone Manipur but has also been fervently opposed by Nagaland and Mizoram should provide a hint about the sentiments of the people in these States. Myanmar is in the throes of a civil war with civilians from its western regions and States such as Sagain and Chin State seeking refuge and humanitarian relief in neighbouring Mizoram and Manipur. The Mizos of Mizoram and the Kuki-Zo community in Manipur feel a kinship with the Chin community and have been organising relief for the refugees. The opposition to the FMR has come from Meitei majoritarian forces in the Imphal valley who have raised the bogey of Chin refugees entering Manipur as a case of illegal migration. The institution of the FMR, as a formalised regime of the movement of citizens across the sparsely populated border to within 16 kilometres of it, for trade and commerce, was a nod to India’s Act East policy. This was also an expression of the will of people of the region who share ethnic relations but are divided by colonially drawn boundaries. The reversal of this regime and the humongous exercise of fencing a border situated in rugged mountains and forests is a case of misplaced priorities and needs reconsideration.

दैनिक जागरण

Date:19-02-24

भारतीयता की सही अवधारणा

गिरीश्वर मिश्र, (लेखक शिक्षाविद एवं पूर्व कुलपति हैं)

भारतीयता एक मनोदशा है। इसे समझने के लिए हमें भारतीय मानस को समझना होगा। यह सिर्फ ज्ञान का ही नहीं, बल्कि भावना का प्रश्न है और इसमें जड़ों की भी तलाश सम्मिलित है । आज इसके लिए कई विचार दृष्टियां उपलब्ध हैं जिनमें पाश्चात्य दृष्टि निश्चित रूप से प्रबल है। गुलामी काल में बनाई छवि या आत्मबोध ने हमारी एक इबारत गढ़ी, जो हमें औपनिवेशिक शिक्षा द्वारा आत्मसात कराई गई। इस क्रम में अंग्रेजी राज का 'अन्य' भारतीय जनों द्वारा 'आत्म' के रूप में अंगीकार किया गया। वेश-भूषा, राज-काज और बात - व्यवहार में अंग्रेजियत अभिजात्य और श्रेष्ठ होने का पर्याय और देसी (भारतीय) दोयम दर्जे का बना दिया गया। अंग्रेजों ने भारत को इंडिया बना दिया और हमने भी संविधान में वैसे ही दर्ज किया - इंडिया दैट इज भारत । भारत और भारतीयता- विमर्श की चुनौती तब और कठिन हो जाती है जब हम भारत की अपनी देशज दृष्टि से आगे बढ़ते हैं। यह भारत दृष्टि एक देशज दृष्टि है, जो 'मैं' और 'तुम' की कोटियों से ऊपर उठकर समग्र सृष्टि को समेटने वाली है। समग्रता, जीवन की पूर्णता, कर्म की भावना, समष्टि की उन्नति और भू-सांस्कृतिक राष्ट्रीयता बोध से समन्वित इस व्यापक विचार की कई सीमाएं हैं।

वस्तुतः विचार और वास्तविक सत्य या अमूर्त और मूर्त की कोटियां एक-दूसरे को स्पर्श करती और गढ़ती हैं। भूत, वर्तमान और भविष्य बहुत हद तक कामचलाऊ भेद हैं, जो देशकाल के भीतर अनिवार्यतः बनते-बिगड़ते रहते हैं। भविष्य क्रमशः वर्तमान होता जाता है और वर्तमान भूत में तब्दील होने को तत्पर रहता है यह भी उल्लेखनीय है कि वाचिक परंपरा से आगे और उसके ह्रास के साथ अब बौद्धिक संकल्प और तकनीकी सहयोग न केवल इनकी प्रस्तुति तय करते हैं, बल्कि इन तक हमारी पहुंच को घटाते बढ़ाते रहते हैं और पुनरीक्षण - पुनर्रचना का अवसर देते हैं। साथ ही वे अवसर के अनुकूल अपनी हितसिद्धि के लिए सामग्री को गोपनीय दस्तावेज कहकर प्रतिबंधित भी करते हैं। अतः आज के युग में हमारी अनुबंधित नियति हो गई है कि हम स्वयं को सतत आविष्कृत, परिभाषित और परिसीमित करते रहें। उसे अपने और दूसरों के लिए सतत प्रमाणित और प्रचारित भी करते रहें। स्वयं अपने लिए और दूसरों के लिए भी इस तरह का उद्यम सामाजिक अस्तित्व की एक अनिवार्यता सी हो रही है। कहना न होगा कि सांस्कृतिक परंपरा का संवर्धन इसी प्रकार के ज्ञान- आख्यान की प्रचलित प्रथाओं के अंतर्गत होने लगा है जिसे आंतरिक और बाह्य शक्तियां संयोजित करती हैं। पेटेंट के इस वर्तमान दौर में यह स्पष्टतः एक तरह की खरीद-फरोख्त जैसी प्रक्रिया होती जा रही है। अब ज्ञान से मुक्ति की कामना निरपेक्ष न होकर सशर्त ही संभव है।

भारतीयता की अवधारणा 'भारत' से अविभाज्य रूप से संपृक्त है, जो निश्चय ही पृथ्वी का एक भू-भाग भी है, पर वह भू-भाग मात्र ही नहीं है। भारतीयों के लिए वह मुख्यतः विचार तथा भाव का पवित्र विषय है। वह हमारी चेतना या सांस्कृतिक आत्मबोध का नियामक एक प्राथमिक अंश है। स्वाभाविक है भारत की स्थिति, प्रतीति और अनुभूति का सत्य निरपेक्ष और अर्थशून्य न होकर द्रष्टा, प्रेक्षक और भावक की पृष्ठभूमि यानी वैचारिक तैयारी और संलग्नता पर ही निर्भर है। मनुष्य की वाचिक ढंग की प्राचीनतम रचना 'वेद' के समय से ही भारत वसुंधरा की छवि जीवनदायिनी माता के रूप में संकल्पित की जाती रही है। हाड़-मांस का बच्चा माता के शरीर से निर्मित होता है, गर्भ में उसके रक्त से पलता है, आकार पाता है और जन्म के उपरांत उसके दूध के आहार पर जीता है। माता की उपस्थिति संतति की अपरिहार्यता है। यद्यपि माता और संतति के मध्य का यह स्वाभाविक संबंध एक चिरंतन सत्य है, तथापि इस संबंध को सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक परिवेश रुचि और लाभ के मद्देनजर भिन्न-भिन्न अर्थ देता रहता है। फलतः विभिन्न कालखंडों में सामाजिक यथार्थ और स्मृति के रूप में अस्मिता निर्मिति अलग-अलग रूप लेती रहती है या कि उसके अलग-अलग पक्षों पर बल दिया जाता रहा है। ऐसे में भिन्न-भिन्न प्रेरणाएं उदित और अस्त होती रही हैं। कुछ भू-क्षेत्रों में समाज के स्तर पर विशिष्ट प्रवृत्तियाँ भी परिलक्षित हुई हैं। विश्व पटल पर दृष्टिपात करें तो साम्राज्यवादी, उपनिवेशवादी और हिंसा तथा शोषण को प्रश्रय देने की प्रवृत्ति का कुछ क्षेत्रों में बाहुल्य इस परिघटना का प्रमाण देते आ रहे हैं। ऐतिहासिक दृष्टि

से देखें तो सभ्यता और संस्कृति की सतत प्रवाहमान मानवी गाथा में अनेक प्रवृत्तियों का संघात मिलता है। इसमें निरंतरता और परिवर्तन, दोनों ही धाराओं को आकार मिलता रहा है।

गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर भारतीय इतिहास का आरंभ आर्य-अनार्य के जाति संघर्ष की कथा के साथ करते है। वह भारतीय महाकाव्यों की सृजनात्मक सामाजिकता - ऐतिहासिकता पर विचार करते हैं। गुरुदेव का सूत्र वाक्य है, 'बहुत्व के बीच अपने आपको बिखराना भारतवर्ष का स्वभाव नहीं है। वह 'एक' को प्राप्त करना चाहता है, इसलिए बाहुल्य को एकत्र में संयत करना ही उसकी साधना है। भारत की अंतरतम सत्य प्रकृति स्वयं उसे निरर्थक बहुत्व के भीषण योग से बचाएगी।' गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर अंतरराष्ट्रीयता पर भी उचित ही टिप्पणी करते हैं कि अपने को त्याग करके दूसरों का अनुगमन जिस तरह निष्फल भिक्षुकता है, उसी तरह दूसरों का त्याग करके अपने को संकुचित करना दारिद्र्य है, चरम दुर्गति है। उनकी राय में अपने देश में सर्वदेशों को और सर्वदेशों के बीच ही अपने देश को सत्य के रूप में पाया जा सकता है।

राष्ट्रीय सहारा

Date:19-02-24

जनता को जानने का हक

विनीत नारायण

किसी भी स्वस्थ लोकतंत्र में मतदाता और नेता के बीच यदि विश्वास ही न हो तो वो रिश्ता ज्यादा लंबा नहीं चलता। लोकतंत्र में हर एक चुना हुआ जनप्रतिनिधि अपने मतदाता के प्रति जवाबदेही के लिए बाध्य होता है। यदि मतदाता को लगे कि उससे कुछ छुपाया जा रहा है तो वो ठगा सा महसूस करता है। लोकतंत्र का सीधा मतलब ही यह होता है कि जनता की मर्जी से चुने गए सांसद या विधायक उनकी आवाज उठाएंगे और उनके ही हक में सरकार चलाएंगे। यदि मतदाताओं को ही अंधेरे में रखा जाएगा तो दल चाहे कोई भी हो दोबारा सत्ता में नहीं आ सकता। पिछले सप्ताह देश की शीर्ष अदालत ने एक ऐसा फैसला सुनाया जिसने देश के करोड़ों मतदाताओं के बीच उम्मीद की किरण जगा दी।

'इलेक्टोरल बॉन्ड' के जरिये राजनैतिक दलों को दिए जाने वाले चुनावी चंदे को लेकर देश भर में एक भ्रम सा फैला हुआ था। जिस तरह इन बॉन्ड्स के जरिये दिए जाने वाले चुनावी चंदे की जानकारी सार्वजनिक नहीं की जा रही थी उसे लेकर भी जनता के मन में काफी संदेह था। जिस तरह से विपक्षी नेता सत्तापक्ष पर आरोप लगा रहे थे कि कुछ औद्योगिक घराने सत्तारूढ़ दल को भारी मात्रा में चुनावी चंदा' दे रहे थे वो असल में चुनावी चंदा नहीं बल्कि सरकार द्वारा अपने हक

में नीतियां बनवाने की रिश्वत है। विपक्ष का ऐसा कहना इसलिए सही नहीं है। क्योंकि कोई भी दल सत्ता में क्यों न हो बड़े औद्योगिक घराने हमेशा से यही करते आए हैं कि वे सरकार से अच्छे संबंध बना कर रखते हैं।

ये अलग बात है कि इन बड़े घरानों द्वारा दिए गए राजनैतिक चंदे की पोल कभी न कभी खुल ही जाती थी, परंतु देश की सर्वोच्च अदालत ने 'इलेक्टोरल बॉन्ड' की जानकारी को साझा न करने के निर्णय को गलत ठहराया और 'इलेक्टोरल बॉन्ड' को रद्द कर दिया। इतना ही नहीं आने वाले तीन हफ्तों में चुनाव आयोग को यह निर्देश भी दे डाले कि 'इलेक्टोरल बॉन्ड' द्वारा दिए गए चंदे की पूरी जानकारी को सार्वजनिक किया जाए। विपक्षी दलों, वकीलों, बुद्धिजीवियों और राजनैतिक पंडितों द्वारा इस फैसले का भरपूर स्वागत किया जा रहा है। यहां हम किसी भी एक विशेष राजनैतिक दल की बात नहीं करेंगे। बड़े औद्योगिक घराने हर उस दल को वित्तीय सहयोग देते आए हैं जो कि सरकार बनाने के काबिल होता है, परंतु सर्वोच्च अदालत में दायर याचिका के अनुसार यदि यह चुनावी चंदा था तो क्या सभी पार्टियों ने इसे चुनाव के लिए ही इस्तेमाल किया? क्या चुनाव आयोग के तय नियमों के अनुसार बड़े राजनैतिक दलों के प्रत्याशी लोक सभा चुनाव में 95 लाख से अधिक राशि खर्च नहीं करते? क्या 'इलेक्टोरल बॉन्ड' को जारी करते समय काले धन की रोकथाम के किए गए दावे के अनुसार चुनावों में नकद राशि खर्च नहीं हुई? अब जब सर्वोच्च अदालत का आदेश हुआ है तो वो सभी राजनैतिक दल जिन्हें 'इलेक्टोरल बॉन्ड' के जरिये सहयोग राशि मिली थी, उन्हें इसकी आमदनी और खर्च का हिसाब भी सार्वजनिक करना पड़ेगा।

वहीं दूसरी ओर जिन-जिन औद्योगिक घरानों ने सत्तापक्ष के अलावा विपक्षी दलों को भी चुनावी चंदा दिया है, उन्होंने यही उम्मीद की थी कि उनका नाम गुप्त रखा जाएगा, परंतु शीर्ष अदालत के इस फैसले के बाद अब यह भी सार्वजनिक हो जाएगा। इसलिए अब इन घरानों को इस बात का डर है कि कहीं उन पर विभिन्न जांच एजेंसियों द्वारा कोई कार्रवाई तो नहीं की जाएगी, मगर यहां एक तर्क यह भी है कि जिन- जिन औद्योगिक घरानों को किसी भी राजनैतिक दल को सहयोग करना है तो उन्हें डरना नहीं चाहिए। यदि वो किसी भी दल की विचारधारा के समर्थक हैं तो उन्हें उस दल को खुल कर सहयोग देना चाहिए, किंतु जो बड़े औद्योगिक समूह हैं वे यदि विपक्षी पार्टियों को कुछ वित्तीय सहयोग देते हैं, उससे कहीं अधिक मात्रा में यह सहयोग राशि सत्तारूढ़ दल को भी देते हैं। इसलिए यह कहना गलत नहीं होगा कि 'इलेक्टोरल बॉन्ड' द्वारा दी गई सहयोग राशि इन घरानों और राजनैतिक दलों के बीच एक संबंध बनाना है। जो भी हो शीर्ष अदालत ने यह बात तो स्पष्ट कर दी है कि लोकतंत्र में पारदर्शिता होना कितना अनिवार्य है। इस फैसले पर टिप्पणी करते हुए सर्वोच्च अदालत के वरिष्ठ वकील कपिल सिब्बल के अनुसार, 'अब चूंकि चुनाव आयोग को 'इलेक्टोरल बॉन्ड' का सारा विवरण सार्वजनिक करना है, तो इससे यह बात भी सार्वजनिक हो जाएगी कि किस राजनैतिक दल को किस बड़े औद्योगिक घराने से भारी रकम मिली है।

इसके साथ ही यह बात पता लगाने में देर नहीं लगेगी कि इस बड़ी सहयोग राशि के बदले उस औद्योगिक समूह को केंद्र या राज्य सरकार द्वारा क्या लाभ पहुंचाया गया है। ऐसा हो ही नहीं सकता कि कोई बड़ा उद्योगपति किसी दल को बड़ी मात्रा में दान दे और फिर केंद्र या राज्य सरकार का मंत्री उसका फोन न उठाए । दान के बदले काम को सरल भाषा में भ्रष्टाचार भी कहा जा सकता है। चुनावी प्रक्रिया को पारदर्शी बनाने की ओर से 'इलेक्टोरल बॉन्ड' का समर्थन करते हुए सिब्बल का एक सुझाव है कि, 'क्यों न औद्योगिक घरानों द्वारा दी गई सहयोग राशि को चुनाव आयोग में जमा कराया जाए और आयोग उस राशि को हर दल की संसद या विधान सभा में भागीदारी के अनुपात में बांट दे। ऐसा करने से किसी एक दल को 'इलेक्टोरल बॉन्ड' का बड़ा हिस्सा नहीं मिल पाएगा।' कुल मिलाकर 'इलेक्टोरल बॉन्ड' पर सर्वोच्च अदालत के आदेश को एक अच्छी पहल माना जा रहा है। इस आदेश से चुनावों में मिलने वाली सहयोग राशि पर

पारदर्शिता दिखाई देगी। नागरिकों के लिए सूचना के अधिकार के तहत चुनावी दान से संबंधित सभी जानकारी को सार्वजनिक किया जाएगा। 2024 के चुनाव से ठीक पहले ऐसे फैसले से उम्मीद की जा सकती है कि इन जानकारियों सार्वजनिक होने पर मतदाता को सही दल के प्रत्याशी को चुनने में मदद मिलेगी। यह फैसला देर से ही आया परंतु दुरुस्त आया और लोकतंत्र को जीवंत रखने में काफी मददगार साबित होगा।

Live हिन्दुस्तान.com

Date:19-02-24

नॉटी बॉय कामयाब

संपादकीय

मौसम विज्ञान के क्षेत्र में अपनी पकड़ मजबूत बनाने की दिशा में भारतीय अंतरिक्ष संस्थान इसरो ने नई कामयाबी हासिल की है। शनिवार की शाम श्रीहरिकोटा से तीन चरण वाले जीएसएलवी ने उड़ान भरने के लगभग 18 मिनट बाद इन्सैट-3डीएस को जियोसिंक्रोनस ट्रांसफर ऑर्बिट (जीटीओ) में तैनात कर दिया। यह ऑर्बिट या कक्षा पृथ्वी से 35,786 किलोमीटर ऊपर स्थित है। इस ऊंचाई पर एक सैटेलाइट या उपग्रह उतने ही समय में एक कक्षा पूरी करता है, जितने समय में हमारा ग्रह अपनी धुरी पर एक चक्कर लगाता है, यह पृथ्वी के एक दिन के समान है। यह दूरसंचार और मौसम उपग्रहों के लिए एक लोकप्रिय कक्षा है, जहां से लगभग स्थिर भाव से उपग्रह अपने लक्ष्य पर निगाह बनाए रख सकता है। यह मौसम पूर्वानुमान और आपदा चेतावनी के लिए उन्नत मौसम संबंधी अवलोकन और भूमि व महासागरों की निगरानी के लिए डिजाइन किया गया है। मौसम विज्ञान एक ऐसा क्षेत्र है, जिसमें भारत को तेज तरक्की करने की जरूरत है, क्योंकि अपनी विविध भौगोलिक स्थिति की वजह से यह अनगिनत प्रकार की चुनौतियों से जूझ रहा है।

सैटेलाइट को कक्षा में स्थापित करने की जिम्मेदारी जिस विमानन वाहन पर थी, उसे नॉटी बॉय कहा जा रहा है। इसरो के एक दिग्गज वैज्ञानिक ने लॉन्चिंग की सफलता के बाद खुशी से कहा है कि शरारती लड़का अब आज्ञाकारी हो गया है। दरअसल, इस लॉन्चिंग रॉकेट को पुख्ता करने में बहुत समस्या आ रही थी। इसी वजह से इसे शरारती लड़का या नॉटी बॉय कहा गया। अगर भारतीय अंतरिक्ष वैज्ञानिकों ने इस शरारती लड़के को अनुशासित बना दिया है, तो यह अपने आप में बड़ी कामयाबी है। तरह-तरह के उपग्रह विकसित कर लेने से कहीं ज्यादा चुनौतीपूर्ण है, उपग्रहों को उचित कक्षाओं में स्थापित करने की क्षमता हासिल करना। वास्तव में, इस समग्र लॉन्चिंग वाहन से यह 16वां प्रक्षेपण था और इसका सफल होना बहुत जरूरी था। मौसम संबंधी उपग्रहों में लगातार विकास हो रहा है और नए-नए उपग्रहों को कक्षाओं में स्थापित करना जरूरी है, ताकि सही भविष्यवाणियों की स्थिति बनी रहे। इसरो के लिए यह बहुत अच्छा समय है। विगत महीनों में इसरो ने कुछ बड़ी सफलताएं हासिल की हैं। उदाहरण के लिए, अगस्त 2023 में देश अपने चंद्रयान-3 लैंडर-रोवर मिशन के साथ चंद्रमा-लैंडिंग क्लब में शामिल हो गया। इसके बाद भारत ने आदित्य-एल1 को भी लॉन्च किया है। इसी वर्ष 1 जनवरी को देश ने ब्लैक-होल का अध्ययन करने वाले एक्स-रे पोलारिमीटर उपग्रह को लॉन्च किया है।

कोई शक नहीं है कि भारतीय अंतरिक्ष विज्ञान ने एक लंबा सफर तय कर लिया है, दो साल बाद भारत के पहले उपग्रह आर्यभट्ट को पचास साल हो जाएंगे। 19 अप्रैल, 1975 को रूस ने भारत के आर्यभट्ट को कक्षा में स्थापित किया था। उसके बाद से भारत इस यात्रा में दुनिया के अनेक देशों से आगे निकल गया है। भारत अभी तक 130 से ज्यादा उपग्रह लॉन्च कर चुका है। वह दूसरे देशों की मदद में भी आगे है। मौसम विज्ञान की बात करें, तो साल 2002 में सफलता के साथ लॉन्च हुआ कल्पना-1 भारत का पहला मौसम संबंधी उपग्रह था। आज इसरो इस स्थिति में पहुंच गया है कि नासा आगे बढ़कर उसके साथ अभियान पर काम कर रहा है। संदेश स्पष्ट है कि भारतीय अंतरिक्ष विज्ञान का भविष्य उज्ज्वल है।

Date:19-02-24

कृत्रिम बुद्धिमत्ता के मायाजाल को समझने में हमारा फायदा

जसप्रीत बिंद्रा, (तकनीक विषेशज्ञ)

जर्मन रसायन विज्ञानी फ्रेडरिक केकुले को एक दिवा-स्वप्न आया था, जिसमें एक सांप ने अपनी ही पूंछ को डस लिया था। तब हेक्सागोनल रिंग संरचना की खोज संभव हुई थी। इससे कार्बनिक रसायन विज्ञान को एक अपूर्व सिद्धांत हासिल मिला था। केकुले अकेले नहीं हैं। कथित तौर पर दिमित्री मेंडेलीव ने आवर्त सारणी का सपना देखा था और थॉमस एडिसन ने भी दावा किया था कि उन्होंने अपने सपनों को ही अपने जीवन में भौतिक रूप से साकार किया है। लेखक स्टीफन किंग ने भी दावा किया था कि उन्होंने नींद में एक उड़ान के दौरान अपने उपन्यास माइजरी का सपना देखा था। ऐसे अनेक रचनाकार या वैज्ञानिक हुए हैं, जिन्होंने अपने देखे सपनों या माया को ही साकार किया है। दुनिया की अनेक श्रेष्ठ कृतियां माया या मतिभ्रम से प्रेरित हैं।

बहुत दिलचस्प है कि चैट-जीपीटी की शुरुआत के बाद 'हेलुसिनेट' शब्द प्रौद्योगिकीय शब्दकोश में शामिल हो गया है और इस शब्द का हिंदी में अर्थ है माया या मतिभ्रम। यह एहसास जगजाहिर है कि हम जेनरेटिव एआई चैटबॉट पर बहुत सारी झूठी और अजीब चीजों के आविष्कार के सपने देखने लगे हैं या तरह-तरह की कल्पना करने लगे हैं। सिडनी नामक एक चैटबॉट ने न्यूयॉर्क टाइम्स के एक रिपोर्टर के प्रति अपने अटूट प्रेम का इजहार कर दिया था। एक अमेरिकी वकील ने एक विमानन कंपनी के खिलाफ मामला दायर करने के लिए एआई पर भरोसा किया, पर न्यायाधीश ने पाया कि उद्धृत तमाम बातें चैट-जीपीटी की उपज थीं।

इतना ही नहीं, जब मैं कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम के लिए भारतीय दर्शन व गोपनीयता पर शोध पत्र लिख रहा था, तब चैट-जीपीटी ने आधिकारिक तौर पर मुझे उद्धृत करने के लिए पांच शोध पत्र दिए थे और वे सब गलत थे। जेनेरेटिव एआई की इस मतिभ्रम या माया रचने की क्षमता से जानकार बहुत चिंतित हो उठे हैं।

वास्तव में, एक बड़े भाषा मॉडल या इंटरनेट की भाषा में कहें, तो लार्ज लंग्वेज मॉडल की कारगरता को अक्सर इस बात से मापा जाता है कि यह कितनी माया उत्पन्न करता है या नहीं करता है। अब कुछ अनुसंधान कंपनियां मतिभ्रम सूचकांक भी पेश करने लगी हैं। एक हालिया कॉर्नेल शोध से पता चलता है कि जीपीटी3.5 इन दिनों 69 प्रतिशत बार

मतिभ्रम पैदा करता है और मेटा का एलएलएएमए2 आश्चर्यजनक रूप से 88 प्रतिशत से ज्यादा बार मतिभ्रम पैदा कर रहा है। जेनेरेटिव एआई के मॉडलों के नए संस्करणों में काफी सुधार हुआ है, पर कंपनियों को चिंता है कि ये मॉडल बड़े पैमाने पर बकवास फैला रहे हैं, इससे उनके ब्रांड और शेयर की कीमत को भी नुकसान पहुंच सकता है। ग्राहक नाराज हो सकते हैं और कानूनी खतरा भी पैदा हो सकता है।

वैसे, हमें इस बारे में अलग ढंग से सोचने की जरूरत है। क्या होगा यदि इस दुनिया में मतिभ्रम ही एक विशेषता बन जाए? तब क्या होगा, अगर हम रचनात्मकता के मायावी स्वरूप का उसी तरह लाभ उठाना शुरू कर दें, जैसे कभी केकुले ने उठाया था? गूगल के सुंदर पिचई इसी विचार के पैरोकार हैं। उनका सुझाव है कि जेनेरेटिव एआई का अनुभव कल्पनाशील होना चाहिए, एक बच्चे की तरह, जो यह नहीं जानता कि जब वह कुछ कल्पना कर रहा है, तो राह में कैसी बाधाएं हैं। एक विशेषज्ञ मार्क आंद्रेसेन कहते हैं, जब हमें उत्तर पसंद आता है, तब हम इसे रचनात्मकता कहते हैं और जब पसंद नहीं आता है, तो मतिभ्रम। वैसे अनेक आधुनिक कलाकारों और रचनाकारों ने एआई पर पकड़ बना ली है, माया के सहारे ही सही, वे कुछ नया रचने में जुट गए हैं।

कुछ विशेषज्ञों का मानना है कि यह मतिभ्रम विज्ञान का विचलन उतना नहीं है, जितना मानव संस्कृति का प्रतिबिंब। यदि हम इसे एक पूर्वानुमान उपकरण के रूप में नहीं, बल्कि एक ऐसे उपकरण के रूप में देखना बंद कर दें, जो हमें नवीन विचार और सामग्री देकर हमारी रचनात्मक शक्ति को बढ़ाता है, तो मतिभ्रम का स्वागत ही किया जाएगा। कल्पना करने वाले लेखक के रूप में सोचें, तो यह सही है, पर गैर-काल्पनिक लेखक के रूप में सोचें, तो गलत है। रचनात्मकता को सहारा अवश्य मिलेगा, लेकिन हमें एआई मॉडलों में सुधार होने तक सचेत रहना ही होगा।